विशेषतः विद्यार्थियों के लिए—

हिन्दी नाट्य-कला

[illegible]

सम्पादक—

प्रो० पेदय्यास एम० ए०, एल० एल० बी०

हिन्दी भवन

[illegible], लाहौर

[illegible] | जून १९३९ | [illegible]

भूमिका

विशेषतः हिन्दी नाट्यकला और सामान्यतया सम्पूर्ण भारतवर्ष की नाट्यकला से सम्बन्ध रखने वाले नित्य इस संग्रह में एकत्र किए गए हैं। वर्तमान हिन्दी साहित्य में नाटकों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान हो गया है। हिन्दी लेखकों में भी नाटकों की लोकप्रियता बढ़ रही है। पंजाब में हिन्दी साहित्य का अंग विशेष लोकप्रिय हो रहा है। इसका कुछ श्रेय स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल के अमर नाटकों के हिन्दी अनुवाद को है और कुछ श्रेय पंजाब यूनिवर्सिटी को। पंजाब यूनिवर्सिटी की हिन्दी परीक्षाओं में इस समय नाटक नियुक्त हैं। इस बात ने नाटकों के महत्व को बहुत बढ़ा दिया है।

यह एक विस्मय की बात है कि नाटकों की इतनी लोकप्रियता के रहते भी हिन्दी में नाट्य-कला के सम्बन्ध की पुस्तकों का लगभग अभाव ही है। जहाँ संसार की अन्य समृद्ध भाषाओं में नाट्यकला के सम्बन्ध में सैकड़ों प्रमाणिक पुस्तकें प्रकाशित होती रहती हैं, वहाँ हिन्दी में इस विषय की गिनी चुनी पुस्तकें ही प्राप्त होंगी। सम्भवतः यही कारण है कि पंजाब यूनिवर्सिटी हिन्दी

हिन्दी नाट्यकला पर स्वभावतः संस्कृत नाटकों का बहुत गहरा प्रभाव है। यह कहा जाता है कि हिन्दी नाट्यकला की इमारत ही संस्कृत नाट्यकला की नींव पर खड़ी हुई है। उसके बाद, विशेषतः बीसवीं सदी की दूसरी दशाब्दी में हिन्दी नाट्यकला पर बङ्गाली नाटकों का बहुत भारी प्रभाव पड़ा। बंगाली नाट्यकला शेक्सपीयर की शैली से प्रभावित हुई है, अतः उसके द्वारा हिन्दी नाट्यकला पर भी शेक्सपीयर की शैली का प्रभाव पड़ा। आजकल हिन्दी नाट्यकला पर अर्वाचीन यूरोपियन, विशेषतः, अंगरेज़ी नाट्यकला का प्रभाव पड़ रहा है। इस संबंध में मैंने इन सब प्रभावों का वर्णन करने का प्रयत्न किया है।

'रूपक का विकास' शीर्षक अध्याय में भारत में नाट्यकला के विकास के सम्बन्ध में संक्षेप में लिखा गया है। बाबू श्यामसुन्दर दास तथा इनके शिष्य पं० पीताम्बर दत्त का यह लेख बहुत मनोरंजक ढंग से लिखा गया है। इसके बाद शिवसाहित्य में नाटक तथा संस्कृत नाटक के सम्बन्ध में दो अध्याय दिए गए हैं।

बंगाली नाटकों का हिन्दी नाटकों पर जो प्रभाव पड़ा है, उस की महत्ता से इनकार नहीं किया जा सकता। अतः श्री द्विजेन्द्रलाल राय तथा नाटकारि रवीन्द्रनाथ जैसे विख्यात और प्रतिभाशाली लेखकों के नाटकों का अध्ययन करने इस संबंध में बड़ा सहायक होता।

प्राचीन हिन्दी नाटकों के सम्बन्ध में भी अनेक [illegible]

गए हैं। पश्चिम भारत के नाटकों और आधुनिक भारतीय रंगमंच पर भी दो संक्षिप्त लेख दिए गए हैं।

नाट्यकला के सम्बन्ध में अन्य अनेक उपयोगी लेखों के अतिरिक्त इस संग्रह के अन्त में रसों के सम्बन्ध में भी श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय द्वारा लिखित एक बहुत ही महत्वपूर्ण लेख दिया गया है। इस लेख में शृङ्गार रस की महत्ता विशेष रूप से प्रतिपादित की गई है।

इसमें सन्देह नहीं कि हमारे पाठ्यक्रम में अश्लीलता को जरा भी स्थान नहीं देना चाहिए। आजकल जनता इस सम्बंध में पर्याप्त जागरूक है, यह बात अभिनन्दनीय है। परन्तु मुझे भय है कि कहीं इसी उत्साह में हम लोग दूसरे किनारे पर न पहुँच जायँ। हमें अश्लीलता और सुन्दरता में गँवारूपन और शिष्ट शृङ्गार में तथा वासना और निष्काम प्रेम में अन्तर करना चाहिए। इन सब को एक ही तराजू पर तोलना साहित्य की हत्या करना होगा।

मैं उन सम्पूर्ण विद्वान लेखकों का कृतज्ञ हूँ, जिनके लेखों का सार इस संग्रह में दिया गया है। मुझे आशा है कि इस संग्रह का समुचित आदर होगा।

टारैन्शिअम रिट्रीट, शिमला
१२ सितम्बर १९३७

वेदव्यास

हिन्दी नाट्य-कला

—:—

रूपक का विकास

(बाबू श्यामसुन्दरदास)

बीज—मनुष्य की प्रारम्भिक शिक्षा का आधार अनुकरण है। यह अनुकरण मनुष्य की भाषा, उसके वेश और व्यवहार की शिक्षा के लिये अनिवार्य साधन है। यह साधन केवल मनुष्यों के लिये ही नहीं वरन् अन्य जीवों के व्यवहार के लिये भी अपेक्षित है। इसी अनुकरण की सामान्य प्रवृत्ति, कुछ परिमार्जित और समुन्नत होकर, समाज के असामान्य व्यक्तियों के व्यापार तक ही परिमित हो जाती है और उसका उद्देश्य किसी निर्दिष्ट आदर्श को स्थापित करना अथवा लोक-रंजन करना होता है। यहाँ असामान्य व्यक्तियों के व्यापारों से यह अर्थ नहीं है कि सामान्य लोगों के अनुकरण की उपेक्षा की गई है। इसका उद्देश्य केवल उन व्यक्तियों के व्यापारों से है, जिनसे नाट्य-प्रयोक्ताओं का अर्थ सिद्ध हो। मानव-जीवन के सभी व्यापार इसके अन्तर्गत आ जाते हैं; इस

जिसमें अभिनय करने वाला किसी के रूप, हाव-भाव, वेश-भूषा, चालचाल आदि का ऐसा अच्छा अनुकरण करे कि उसका और वास्तविक व्यक्ति का भेद प्रत्यक्ष न हो सके। अब इस अर्थ में साधारणतः 'नाटक' शब्द का प्रयोग होता है। यह शब्द संस्कृत की 'नट' धातु से बना है जिसका अर्थ सात्विक भावों का प्रदर्शन है। भिन्न भिन्न देशों में इस कला का विकास भिन्न-भिन्न रूपों और समयों में हुआ है। परन्तु एक बात जो सभी नाटकों में समान रूप से पाई जाती है वह यह है कि सभी नाटकों में पात्र नाट्य के द्वारा किसी न किसी व्यक्ति के व्यापारों का अनुकरण या उनकी नकल करते हैं।

उत्पत्ति—मनुष्य स्वभाव से ही ऐसा जीव है जो सदा यह चाहता है कि मैं अपने भाव और विचार दूसरों पर प्रकट करूँ। वह उन्हें अपने अन्तःकरण में छिपा रखने में असमर्थ है। बिना किये उन्हें दूसरों पर प्रकट किये चैन नहीं मिलता। अतएव अपने भावों और विचारों को दूसरों पर प्रकट करने की इच्छा मानव-प्रकृति का एक अनिवार्य गुण है। मनुष्य अपने भावों और विचारों को इङ्गितों या वाणी द्वारा अथवा दोनों की सहायता से प्रकट करता है। भावों और विचारों को अभिव्यञ्जित करने की ये रीतियाँ वह मानव-समाज में मिल कर सीख लेता है। किसी उत्सव के समय वह इन्हीं भावों को नाच-गा कर प्रकट करता है। वाणी और इंगित के अतिरिक्त भावों और विचारों के अभिव्यञ्जन का एक तीसरा प्रकार अनुकरण या नकल है। बाल्यावस्था से ही

प्राप्त हुआ है, उन जातियों ने भी रूपक के संगीत, नृत्य, भाव-भंगी, वेश-भूषा आदि भिन्न-भिन्न आवश्यक और उपयोगी अंगों में रुचि या आवश्यकता आदि के अनुसार थोड़ा बहुत परिवर्तन और परिवर्धन करके उनके अनेक भेदों और उपभेदों की सृष्टि कर डाली है। परन्तु रूपक वास्तव में उसी समय साहित्य के अंतर्गत आ जाता है जब उसमें किसी के अनुकरण या नकल के साथ ही साथ कथोपकथन या वार्तालाप भी हो जाता है। रूपक में संगीत या वेश-भूषा आदि का स्थान इसके पीछे आता है। साथ ही हमें इस बात का ध्यान भी रखना चाहिए कि रूपक की सृष्टि संगीत और नृत्य के कारण तथा इन्हीं दोनों से हुई है।

नाटकों का आरम्भ—रूपक की सृष्टि संगीत और नृत्य से तो अवश्य हुई है, पर उसके विकास के मुख्य साधन महाकाव्य और गीत-काव्य हैं। इस विषय पर विचार करने से पहले हम संक्षेप में यह बतला देना चाहते हैं कि रूपक का आरम्भ कैसे अवसरों पर और किन किन उद्देश्यों से हुआ था। प्राचीन काल में मानव-समाज अपने विकास की अत्यन्त आरम्भिक अवस्था में था। लोग ऋतुओं आदि के परिवर्तन को देखकर मन ही मन बहुत भयभीत होते थे और उनके परिणाम तथा प्रभाव से बचने के लिये देवताओं के उद्देश्य से अनेक प्रकार के उत्सव करके मानते गाते थे। जिस समय भीषण वर्षा होती थी अथवा जलाने का जाता पड़ता था उस समय उनके प्राण संकट में पड़ जाते थे और वे उस संकट से बचने के लिये अपने अपने देवताओं का आराधन करते थे। इस

होते थे। उन देवताओं में से कुछ तो कल्पित होते थे और कुछ ऐसे वीर-पूर्वज होते थे, जिनमें किसी देवता की कल्पना कर ली जाती थी। ऐसी दशा में उन देवताओं के जीवन में से रूपक की यथेष्ट सामग्री निकल आती थी। इसी प्रकार के उत्सव और रूपक घरना और जापान आदि में भी हुआ करते थे। फसल हो चुकने पर तो ऐसे उत्सव और रूपक होते ही थे, पर कहीं कहीं फसल बोने के समय भी इसी प्रकार के उत्सव और रूपक हुआ करते थे। इन उत्सवों पर देवताओं से इस बात की प्रार्थना की जाती थी कि खेतों में यथेष्ट धन-धान्य उत्पन्न हो। भारत में तो अब तक फसलों के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के पूजन और उत्सव आदि प्रचलित हैं, जिनमें से होली का त्योहार मुख्य है। यह त्योहार गेहूँ आदि की फसल हो जाने पर होता है और उसी से सम्बन्ध रखता है। अब भी होली के अवसर पर इस देश में नृत्य, गीत आदि के साथ साथ स्वांग निकलते हैं, जो वास्तव में रूपक के पूर्व रूप ही हैं। यद्यपि आजकल यह उत्सव अश्लीलता के संयोग से बिलकुल भ्रष्ट हो गया है, पर इससे हमारे कथन की पुष्टि में कोई बाधा नहीं पड़ती।

वीर-पूजा—प्राचीन काल में जिस प्रकार धन-धान्य आदि के लिये देवताओं का पूजन होता था, उसी प्रकार पूर्वजों और बड़े २ ऐतिहासिक पुरुषों का भी पूजन होता था। उन पूर्वजों और ऐतिहासिक पुरुषों के उपलक्ष में बड़े-बड़े उत्सव भी होते थे, जिनमें इन उत्सवों में [illegible] की जाती थी अथवा

बहुत प्रसिद्ध है। कहते हैं कि हज़रत दाऊद भी ईसा मसीह के सामने नाचते थे। किसी माननीय और प्रतिष्ठित अभ्यागत के आदर के लिये नृत्य-गीत का आयोजन करने की प्रथा अब तक सभ्य और असभ्य सभी जातियों में प्रचलित है। प्राचीन काल में जब योद्धा लोग विजय प्राप्त करके लौटते थे, तब वे स्वयं भी नाचते-गाते थे और उनका सत्कार करने के लिये नगर-निवासी भी उनके सामने आकर नाचते-गाते थे। कभी कभी ऐसा भी होता था कि युद्ध-क्षेत्र में वीर योद्धा [illegible] भी नृत्य करके [illegible]

[illegible]

सम्बन्ध रखता है [illegible]

नाचने-गाने का सारा काम स्त्रियाँ ही करती हैं, पर रामायण के नाटक में केवल पुरुष ही भाग लेते हैं; उसमें कोई स्त्री नहीं सम्मिलित होने पाती।

भारतीय नाट्य-साहित्य की सृष्टि—यह तो हुई नाट्य की ठेठ उत्पत्ति और विकास की बात। अब हम संक्षेप में यह बतलाना चाहते हैं कि संसार के भिन्न भिन्न देशों में उनके नाट्य-साहित्य की सृष्टि कब और कैसे हुई। यह तो एक स्वतः सिद्ध बात है कि नाट्य की उत्पत्ति गीति-काव्यों और कथोपकथन से हुई। अब यदि हमें यह ज्ञात हो जाय कि इन गीति-काव्यों और कथोपकथनों का आरम्भ सबसे पहले किस देश में हुआ, तो हमें अनायास ही प्रमाण मिल जायगा कि संसार के किस देश में सब से पहले नाट्य-कला की सृष्टि हुई। इस दृष्टि से देखते हुए केवल हमें ही नहीं वरन संसार के अनेक बड़े बड़े विद्वानों को भी विवश होकर यही मानना पड़ता है कि जहाँ भारतवर्ष और अनेक बातों में आविष्कर्ता और पथ-प्रदर्शक था, वहाँ रूपकों, गीति-काव्यों और कथोपकथन संबन्धी साहित्य उत्पन्न करने में भी वह प्रथम और अग्रगामी था। भारतीयों का परंपरागत विश्वास है कि ब्रह्मा ने वेदों में सार लेकर नाटक की सृष्टि की थी। वास्तविक बात यह है कि नाटक के मूल-तत्व, जो समय पाकर नाटक के रूप में विकसित हो जाते हैं, वेदों में स्पष्ट रूप से पाए जाते हैं। हमारे वेद संसार का सबसे प्राचीन साहित्य हैं। उनमें भी सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथा प्राचीन ऋग्वेद है।

ये केवल नाट्य को किस प्रकार छोड़ सकते थे। जहाँ तक सम्भव था, वहाँ तक खींच-तान करके रिजवे ने अपनी ओर से यह सिद्ध करना चाहा कि भारत में रूपकों की सृष्टि बहुत पीछे हुई। पर फिर भी उसने भारतीय नाटकों की सृष्टि का कोई समय [illegible] नहीं किया है, और अन्त में [illegible] प्रकार से [illegible] [illegible] है कि [illegible] और [illegible] समय तक भारत में [illegible]

जड़वृत्ति साधुओं का उल्लेख करते हुये एक साधु की कथा दी है। एक बार एक साधु कहीं से बहुत देर कर के आया। गुरु के पूछने पर उसने कहा कि मार्ग में नटों का नाटक हो रहा था, वही देखने के लिये मैं ठहर गया था। गुरु ने कहा कि साधुओं को नटों के नाटक आदि नहीं देखने चाहिएँ। कुछ दिन पीछे उस साधु को एक बार फिर अपने आश्रम को आने में विलम्ब हो गया। इस बार गुरु के पूछने पर उसने कहा कि एक स्थान पर नटियों का नाटक हो रहा था, मैं वही देखने लग गया था। गुरु ने कहा कि तुम बड़े जड़बुद्धि हो। तुम्हें इतनी भी समझ नहीं कि जिसे नटों का नाटक देखने के लिये निषेध किया जाय, उसके लिये नटियों का नाटक देखना भी निषिद्ध है। इन सब बातों के उल्लेख से हमारा यही तात्पर्य है कि आज से लगभग दो-तीन हज़ार वर्ष पहले भी इस देश में ऐसे ऐसे नाटक होते थे, जिन्हें सर्वसाधारण बहुत सहज में और प्रायः देखा करते थे। कौंदेरम्भाभिसार सरीखे नाटकों का अभिनय करना जिनमें फैलाने के दृश्य दिखाये जाते हों और ऐसी रङ्गशालाएँ बनाना जिनमें राजा रथ पर आते और आकाश-मार्ग से जाते हों (दे० विक्रमोर्वशीय) सहज नहीं है। नाट्य-कला को उन्नति की इस सीमा तक पहुँचने में सैकड़ों हज़ारों वर्ष लगे होंगे। कौंदेरम्भाभिसार के संबंध में हरिवंश पुराण में लिखा है कि उसमें प्रद्युम्न ने नल-कूबर का, शूर ने रावण का, साम्ब ने विदूषक का, गद ने परिव्राजक का और मनोवती ने रम्भा का रूप धारण किया था और सारे नाटक का अभिनय इतनी उत्तमता के साथ किया गया था कि उसे देख कर बज्रनाभ आदि दानव बहुत ही प्रसन्न

है, हितकारी उपदेशों को देनेवाला है और धैर्य, क्रीड़ा और सुख आदि उत्पन्न करने वाला है, १—७९।"

"दुःखित, असमर्थ शोकार्त तथा तपस्वियों को भी समय पर शांति प्रदान करनेवाला यह नाट्य मैंने बनाया है, १—८०।"

"यह नाट्य धर्म, यश, आयु की वृद्धि करने वाला, लाभ करने वाला, बुद्धि बढ़ाने वाला और संसार को उपदेश देने वाला होगा, १—८१।"

"न कोई ऐसा वेद है, न शिल्प है, न विद्या है, न कला है, न योग है, न कर्म है जो इस नाट्य में नहीं दिखाया जा सकता, १—८२।"

"यह नाट्य वेद, विद्या, इतिहास तथा अर्थशास्त्र का स्मरण करानेवाला तथा संसार में विनोद करने वाला होगा, १—८६।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय नाट्य का आदर्श केवल जनता की चित्तवृत्ति को आनन्दित करना तथा उनकी इंद्रिय लिप्सा को उत्तेजित करना नहीं वरन् धर्म, आयु और यश की वृद्धि करना है। भारतीय नाट्य-शास्त्र तथा नाट्य-साहित्य की यही विशेषता है।

कठपुतली का नाच—अब हम रूपकों के सम्बन्ध में एक और बात का विवेचन करना चाहते हैं जिससे रूपकों की प्राचीनता और उनके आरम्भिक रूप पर विशेष प्रकाश पड़ने की संभावना है। पाठकों में से बहुतों ने कठपुतली का नाच देखा होगा। [illegible] के लिये पुत्रिका, पुत्तली और पुत्तलिका

है, हितकारी उपदेशों को देनेवाला है और धैर्य, क्रीड़ा और सुख आदि उत्पन्न करने वाला है, १—७६।"

"दुःखित, असमर्थ शोकार्त्त तथा तपस्वियों को भी समय पर शांति प्रदान करनेवाला यह नाट्य मैंने बनाया है, १—८०।"

"यह नाट्य धर्म, यश, आयु की वृद्धि करने वाला, लाभ करने वाला, बुद्धि बढ़ाने वाला और संसार को उपदेश देने वाला होगा, १—८१।"

"न कोई ऐसा वेद है, न शिल्प है, न विद्या है, न कला है, न योग है, न कर्म है जो इस नाट्य में नहीं दिखाया जा सकता, १—८२।"

'यह नाट्य वेद, विद्या, इतिहास तथा अर्थशास्त्र का स्मरण करानेवाला तथा संसार में विनोद करने वाला होगा, १—८६।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय नाट्य का आदर्श केवल जनता की चित्तवृत्ति को आनन्दित करना तथा उनकी इंद्रिय-लिप्सा को उत्तेजित करना नहीं वरन् धर्म, आयु और यश की वृद्धि करना है। भारतीय नाट्य-शास्त्र तथा नाट्य-साहित्य की यही विशेषता है।

कठपुतली का नाच—अब हम रूपकों के सम्बन्ध में एक और बात का विवेचन करना चाहते हैं जिनसे रूपकों की प्राचीनता और उनके आरम्भिक रूप पर विशेष प्रकाश पड़ने की संभावना है। पाठकों में से बहुतों ने कठपुतली का नाच देखा होगा। संस्कृत में कठपुतली के लिये पुत्रिका, पुत्तली और पुत्तलिका

बद्ध विवरण नहीं दिया जा सकता। उसका क्रमबद्ध इतिहास प्रायः प्रसिद्ध भरत मुनि के समय से ही मिलता है। पर यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि भरत मुनि ने जो नाट्य-शास्त्र लिखा है, वह नाटक का लक्षण-ग्रन्थ है और वह भी कई लक्षण-ग्रन्थों के अनन्तर लिखा गया है। यह तो स्पष्ट ही है कि नाटक-संबन्धी लक्षण-ग्रन्थ उसी समय लिखे गये होंगे, जब देश में नाटकों और नाट्य-कला का पूर्ण प्रचार हो चुका होगा क्योंकि अनेक नाटकों को रंगमंच पर देखे अथवा पढ़े बिना न तो उनके गुणदोषों का विवेचन हो सकता था और न उनके सम्बन्ध में लक्षण-ग्रन्थ ही बन सकते थे। भरत को कालिदास तक ने आचार्य और माननीय माना है। अनेक प्रमाणों से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि भरत का समय ईसा से कम से कम तीन चार सौ वर्ष पहले का तो अवश्य ही है, इससे और पहले चाहे जितना हो। कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र में नाटकों और रंगशालाओं का जो वर्णन मिलता है उससे भी यही सिद्ध होता है कि उस समय इस देश में नाटकों का पूर्ण प्रचार था और बहुत से लोग नट का काम करते थे। अर्थ-शास्त्र का समय भी ईसा से कम से कम तीन सौ वर्ष पहले का है। प्रायः उसी समय के लगभग भरत मुनि ने नाट्य-शास्त्र की भी रचना की थी। नाट्य-शास्त्र के आरम्भ में कहा गया है कि एक बार वैवस्वत मनु के दूसरे युग में लोग बहुत दुखित हुए। इस पर इन्द्र तथा दूसरे देवताओं ने जाकर ब्रह्मा से प्रार्थना की कि आप मनो-विनोद का कोई ऐसा साधन उत्पन्न कीजिए, जिससे शूद्रों तक का चित्त प्रसन्न हो सके। इस पर ब्रह्मा ने चारों वेदों को बुलाया

नागानंद आदि नाटक हैं। शूद्रक का मृच्छकटिक नाटक भी बहुत अच्छा है, पर कहते हैं कि वह भास के दरिद्रचारुदत्त के आधार पर लिखा गया है। इनके पीछे के नाटककारों में भवभूति हुए जो कन्नौज के राजा यशोवर्मन् के आश्रित थे और जिनका समय सातवीं शताब्दी का अन्तिम भाग माना जाता है। इनके रचित महावीरचरित, उत्तर-रामचरित और मालतीमाधव नाटक बहुत प्रसिद्ध हैं। इनके उपरांत नवीं शताब्दी के मध्य में भट्ट नारायण ने वेणीसंहार और विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस की रचना की थी। नवीं शताब्दी के अन्त में राजशेखर ने कर्पूरमंजरी, बालरामायण और बाल भारत आदि नाटक रचे थे और ग्यारहवीं शताब्दी में कृष्णमिश्र ने प्रबोध-चन्द्रोदय नाटक की रचना की थी। दसवीं शताब्दी में धनंजय ने दशरूपक नामक प्रसिद्ध लक्षण-ग्रन्थ भी लिखा, जिसमें नाटक की कथा-वस्तु, नायक, पात्र, कथोपकथन आदि का बहुत अच्छा विवेचन किया गया है।

ईसवी दसवीं या ग्यारहवीं शताब्दी तक तो संस्कृत में बहुत अच्छे-अच्छे नाटकों की रचना होती रही, पर इसके उपरांत संस्कृत नाटकों का पतन-काल आरम्भ हुआ। इसके अनन्तर जो नाटक बने वे नाट्य-कला की दृष्टि से उतने अच्छे नहीं हैं, जितने अच्छे उससे पहले के बने हुए नाटक हैं। इसी लिये हम उनका कोई उल्लेख न करके दूसरी बात पर विचार करना चाहते हैं।

भारतीय नाट्य-कला पर यूनानी प्रभाव—संस्कृत के

अधिक से अधिक केवल यही सूचित होता है कि जिस समय हमारे यहाँ के अच्छे-अच्छे नाटक बने थे उस समय यवनों और शकों के साथ हमारा सम्बन्ध हो चुका था। तीसरी बात यह है कि भारतीय और यूनानी नाटकों के तत्वों में आकाश और पाताल का अन्तर है। हमारे यहाँ करुण (Tragic) और हास्य (Comic) का कोई झगड़ा ही नहीं है। हमारे सभी नाटक लोकानन्दकारी होते थे और हमारे यहाँ रङ्गमञ्च पर हत्या, युद्ध आदि के दृश्य दिखलाना वर्जित था। यूनानी नाटकों में केवल चरित्र-चित्रण की ही प्रधानता है, पर हमारे यहाँ प्राकृतिक शोभा के वर्णन और रसों की प्रधानता मानी गई है। विक्रमोर्वशीय का आरम्भ ही हिमालय के विशाल प्राकृतिक दृश्य से होता है। उत्तर-रामचरित और शकुन्तला में भी प्राकृतिक शोभा के ही वर्णन हैं। यूनानी नाटक बहुधा खुले मैदानों में हुआ करते थे, अथवा ऐसे अखाड़ों आदि में हुआ करते थे जिनमें और भी अनेक प्रकार के खेल-तमाशे होते थे। पर भारतीय नाटक एक विशेष प्रकार की बनी हुई रङ्गशालाओं में होते थे। तात्पर्य यह है कि कदाचित् एक भी बात ऐसी नहीं है जो यूनानी और भारतीय नाटकों में समान रूप से पाई जाती हो। हाँ, दोनों में अन्तर बहुत अधिक और प्रत्यक्ष है, और फिर सब से बड़ी बात यह है कि नाटक की रचना करना प्रतिभा का काम है और प्रतिभा कभी किसी की नकल नहीं करती। वह जो कुछ करती है, आपसे आप, सर्वथा स्वतन्त्र रूप से करती है।

उनके अनुकरण पर और और देशों में जो नाटक बने वे प्रायः दुःखांत ही थे।

यद्यपि ये अजा-गीत युरोप के आधुनिक करुण नाटकों के मूल रूप हैं, तथापि यूनान में वास्तविक करुण नाटकों का आरंभ महाकवि होमर के ईलियड महाकाव्य की रचना के अनंतर हुआ था। पहले तो देवताओं के सामने केवल नृत्य और गीत होते थे, पर पीछे से उनमें संवाद या कथोपकथन भी मिला दिया गया था। गायकों का प्रधान एक मंच पर खड़ा हो जाता था और शेष गायकों के साथ उसका कुछ कथोपकथन होता था, पर इस कथोपकथन का मूल संभवतः महाकवि होमर का ईलियड महाकाव्य था। पहले शहरों में कुछ भिखमंगे ईलियड महाकाव्य के इधर-उधर के अंश गाते फिरते थे जो लोगों को बहुत पसंद आते थे और जिनका प्रचार शीघ्र ही बहुत बढ़ गया था। कुछ दिनों के अनंतर धार्मिक उत्सवों पर अजा-गीतों के साथ साथ ईलियड के अंश भी गाए जाने लगे। इस प्रकार अजा-गीतों और ईलियड-गान के संयोग से यूनान में नाट्य-कला का बीज [illegible] और नृत्य में कथोपकथन के मिल जाने [illegible] वेश-भूषा और भाव-भंगी के अतिरिक्त [illegible] की कसर रह जाती है।

इस प्रकार नाटकों का [illegible] के उपरांत धीरे-धीरे नाट्य-कला का विकास होने [illegible] उसमें नवीनता अथवा विशेषता लाने लगे [illegible] इसी [illegible] सौ वर्ष पूर्व थेस्पिस नामक एक यूनानी कवि हुआ था जिसने यूनान में सबसे

की थी और उनमें अपने बनाए कुछ नए गीत मिलाए थे। इसके उपरांत नेश्मन, टालिनस आदि कई व्यक्तियों ने उसमें कुछ और सुधार तथा परिवर्तन किए। परंतु वे हास्यरस-प्रधान गीत और नाटक यूनानियों को पसंद नहीं आए। यूनान में प्रायः सिकंदर के समय तक करुण नाटकों की ही प्रधानता रही तथा हास्य-नाटकों का उतना अधिक प्रचार न हो सका। इन दिनों इन हास्य [illegible] और पात्रों का [illegible] और [illegible] वैयक्तिक, [illegible] अधि- [illegible]

कारण कदाचित् यही था कि प्राचीन काल में प्रायः सभी देशों में अभिनेता और नट कुछ उपेक्षा की दृष्टि से देखे जाते थे। रोम के लोग विजेता थे, इसलिए वे अभिनय आदि के लिये अपने दासों को शिक्षा देकर तैयार किया करते थे। रोम की सभ्यता और बल की वृद्धि के साथ ही साथ वहाँ नाटकों की भी खूब उन्नति हुई थी। पर ईसा की चौथी शताब्दी के मध्य में जब ईसाई पादरियों का जोर बहुत बढ़ गया और वे नाटकों तथा अभिनेताओं की बहुत निंदा और विरोध करने लगे, रोम में नाट्य-कला का ह्रास आरंभ हुआ। जब रोमन लोग रंगशालाओं में अपने मनोविनोद के लिये अनेक प्रकार के क्रूरता और निर्दयता-पूर्ण खेल कराने लग गये और उन रंगशालाओं के कारण लोगों में विलासिता बहुत बढ़ गई तब नाटकों आदि का और भी घोर विरोध होने लगा तथा राज्य की ओर से उनका प्रचार रोकने के लिये अनेक प्रकार के नियम बनने लगे। यह निश्चय किया गया कि नट लोग ईसाइयों के [illegible] उत्सवों आदि में सम्मिलित न हो सकें और जो लोग रविवार या दूसरी छुट्टियों के दिन [illegible] नाट्यशालाओं में जाया करें वे समाज-[illegible] उस समय [illegible] यूरोप में और [illegible] ईसाई धर्म का बहुत [illegible] यहाँ तक [illegible] धर्माचार्यों [illegible] के कारण रोम में नाट्य-कला [illegible] नाटक बिलकुल [illegible] इसके [illegible] ईसाई धर्माचार्यों तथा

एक बात थी। अब तक तो युरोप के नाटकों का रूप बहुधा स्वांगों और रासों आदि के समान ही था, पर युरोप के पुनरुत्थान काल के उपरान्त उनको साहित्यिक रूप भी प्राप्त होने लग गया था। दूसरी बात यह थी कि पुनरुत्थान-काल के पूर्व प्रायः सारे युरोप के नाटक अनेक बातों में बिलकुल एक से होते थे। पर उसके उपरान्त प्रत्येक देश में अपने अपने ढंग पर अलग अलग [illegible]

है। जिस प्रकार रोम में नाट्य-कला का प्रचार यूनान के अनुकरण पर हुआ था, उसी प्रकार यूनान में नाटकों का प्रचार मिस्र के नाटकों की देखादेखी हुआ था। यूनान में नाटकों का प्रचार होने से बहुत पहले मिस्र में नाटकों का बहुत कुछ प्रचार था। उनका आरम्भिक रूप भी यूनानी नाटकों के आरम्भिक रूप से बहुत कुछ मिलता जुलता था। वहाँ भी अनेक धार्मिक अवसरों पर देवी देवताओं के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली घटना के नाटक हुआ करते थे। परन्तु मिस्र की नाट्य-कला भारत की नाट्य-कला के समान इतनी प्राचीन है कि उसका उस समय का ठीक-ठीक और शृङ्खलाबद्ध इतिहास मिलना बहुत ही कठिन है।

चीन के नाटक—चीन में भी नाट्य-कला का विकास, भारत की भाँति, बहुत प्राचीन काल में नृत्य और संगीत कलाओं के संयोग से हुआ था। पता चलता है कि कनफूची के समय में भी वहाँ अपने आरम्भिक रूप में नाटक हुआ करते थे। ऐसे नाटक प्रायः फसल अथवा युद्ध आदि की समाप्ति पर हुआ करते थे। उनमें लोग नृत्य और गीत आदि के साथ कई प्रकार की नकलें किया करते थे। परन्तु नाटक के शुद्ध और व्यवस्थित रूप का प्रचार वहाँ ईसा से लगभग ४८० वर्ष पीछे हुआ था। चीन वाले कहते हैं कि तत्कालीन सम्राट् वान ने पहले पहल नाटक का आरंभ किया था। पर कुछ लोगों का मत है कि नाटक का आविष्कर्ता सम्राट हुएन-सङ्ग था, जो ईसवी के लगभग हुआ था। चीनी नाट्य-कला का इतिहास में विभाजित किया जा

[illegible]

भारतीय और संस्कृत नाटकों से बहुत कुछ मिलती जुलती हैं।

आधुनिक भारतीय नाटक—हम ऊपर कह चुके हैं कि ईसा की दसवीं शताब्दी के उपरांत भारतीय नाट्य-कला का ह्रास होने लगा था और अच्छे नाटकों का बनना प्रायः बन्द सा हो चला था। यद्यपि हमारे यहाँ के हनुमन्नाटक, प्रबोधचन्द्रोदय, रत्नावली, मुद्राराक्षस आदि नाटक दसवीं और बारहवीं शताब्दी के बीच में बने थे, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि उन दिनों नाटकों की रचना और प्रचार दोनों में कमी होने लग गई थी। चौदहवीं शताब्दी के उपरांत तो मानो एक प्रकार से उनका सर्वथा अन्त ही हो गया था। इधर संस्कृत में जो थोड़े बहुत नाटक बने भी, वे प्रायः साधारण कोटि के थे। यहाँ इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि भारतवर्ष में नाट्य-कला का ह्रास ठीक उसी समय प्रारम्भ हुआ था, जिस समय इस देश पर मुसलमानों के आक्रमणों का आरम्भ हुआ था। विदेशियों के आक्रमणों और राजनीतिक अव्यवस्था के समय यदि लोगों को खेल तमाशे अच्छे न लगें तो यह कोई अस्वाभाविक बात नहीं है, और इसके परिणाम स्वरूप यदि भारत में नाट्य-कला का अन्त हो गया तो इसमें किसी को आश्चर्य न होना चाहिये। कुछ दिनों के आक्रमणों और राजनीतिक अव्यवस्था के उपरांत प्रायः सारा देश मुसलमानों के हाथ में चला गया। आरम्भ में ही मुसलमानों में संगीत और नाट्य-कला का नितान्त अभाव था।

विश्व-साहित्य

में

नाटक

([illegible])

नाटक-शब्द नट्-धातु से बना है। 'नट्' नाचने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अँगरेज़ी में नाटक को ड्रामा कहते हैं। ड्रामा के लिये संस्कृत में नाटक की अपेक्षा 'रूपक'-शब्द अधिक उपयुक्त है। ड्रामा का मूल-शब्द इसी अर्थ का द्योतक है। ड्रामा उन रचनाओं को कहते हैं, जिनमें अन्य लोगों के क्रियाकलापों का अनुकरण इस प्रकार किया जाता है कि मानो वे ही काम कर रहे हों। जूलियस सीज़र के नाटक में कोई व्यक्ति उसका इस प्रकार अनुकरण करता है, मानो वही जूलियस सीज़र है। दूसरों का अनुकरण करना मनुष्य-मात्र का स्वभाव है। बालक अपने माता-पिता का अनुकरण करता है। छोटे लोग बड़ों का अनुकरण करते हैं। नाटकों की उत्पत्ति मनुष्यों के स्वभाव ही से हुई है। एक बात और है, नाटक में सिर्फ क्रिया-कलापों का ही अनुकरण

सबसे प्राचीन नाट्य-शास्त्र भरत मुनि का ही है। पाणिनि के समय में भी नाट्य-शास्त्र प्रचलित थे। उन्होंने दो आचार्यों का उल्लेख किया है—शिलालिन और कृशाश्व। पतंजलि के समय में भी नाटक खेले जाते थे। उनके महाभाष्य में कंस-वध और बलि-बंधन के खेले जाने का साफ़-साफ़ उल्लेख है।

वैदिक संवाद—हिन्दू नाट्य-साहित्य का प्राचीनतम रूप देखने के लिये हमें वेदों की आलोचना करनी चाहिये। ऋग्वेद के कई सूक्तों में कुछ संवाद हैं—जैसे यम और यमी का संवाद, पुरूरवा और उर्वशी इत्यादि। इनकी गणना हम नाटकों में कर सकते हैं। पुरूरवा और उर्वशी का संवाद ही पुराणों में, कथारूप में, विस्तार-पूर्वक वर्णित हुआ है, और उसे ही कालिदास ने नाटक का रूप दिया है। जान पड़ता है, पहले-पहल नाटकों में सिर्फ संगीत ही रहता था। पीछे से उनमें संवाद (अर्थात् भाषण या कथोपकथन) जोड़े गए हैं। फिर, इसके अनन्तर कदाचित् उनमें कृष्णचरित का समावेश किया गया है। कुछ भी हो, इसमें तो सन्देह नहीं कि बहुत प्राचीन-काल में ही नाटकों का अभिनय होने लगा था।

भारतीय नाटकों की विशेषताएं—हिन्दू-नाटककार कार्यों और विचारों की एकताओं का खूब ख्याल रखते थे। उनके मर्मवाद ने सभी नाटकों की घटनाओं को कार्य-कारण की शृंखला में बांध रक्खा है। हिन्दू साहित्य में संयोगान्त और वियोगान्त नाटक अलग-अलग नहीं हैं। उनमें हर्ष और शोक के भाव

इनमें फसल, युद्ध, शान्ति आदि विषयों का अलंकारिक रूप से वर्णन रहता था। यू-यैंग-द्वारा चीन-विजय पर एक ऐसे ही नाटक की रचना की गई थी। कुछ दन्तकथाओं के अनुसार यह कहा जाता है कि सन् ४८० के लगभग सम्राट् वान-टी ने नाटकों का आविष्कार किया। पर अधिकांश लोगों की यह सम्मति है कि सन् ७२० में संगीत-कला-विशारद सम्राट् ह्यूनसंग ने ही नाटकों का प्रचार किया। पैंटोमाईम की अवहेलना और नाटकों की सृष्टि होने लगी।

चीनी-नाटकों का आदर्श बड़ा ऊँचा है। कहा जाता है, प्रत्येक नाटक शिक्षा-प्रद और भाव-पूर्ण होना चाहिए। जो नाटककार अश्लील अथवा अनाचार-द्योतक नाटकों की रचना करता है, वह दण्डनीय है। लोगों का यह विश्वास है कि जब तक ऐसे नाटक पृथ्वी पर खेले जायेंगे, तब तक मृत्यु के बाद भी नाटककार को नरक-यन्त्रणा भोगनी पड़ेगी। चीनी-नाटकों में [illegible] और [illegible] नाटकों का भेद नहीं है। वहाँ नाटकों [illegible] [illegible] है। धार्मिक नाटकों का [illegible] ऊँचा है। ऐतिहासिक नाटकों का भी अभाव नहीं है [illegible] [illegible] कानून बना दिया गया है कि सम्राट्, [illegible], [illegible] और [illegible] का [illegible] नाटकों में नहीं किया जाना चाहिए।

चीनी-नाटक इतिहास, [illegible] कथा और [illegible] से ही तैयार किए जाते हैं। आधुनिक नाटकों का प्रचार यहाँ अभी हाल ही में हुआ है। परन्तु इन नाटकों को यहाँ वैसी सफलता नहीं प्राप्त हुई, जैसी कि प्राचीन नाटकों को। सच पूछो, तो आधुनिक

शामिल है । लैन-फ़ांग स्त्री नहीं, पुरुष है । तो भी वह स्त्री का अभिनय इस खूबी से करता है कि लोग देखकर दंग हो जाते हैं । उसका स्वर बहुत ही मधुर है । उसके अभिनय में ज़रा भी कृत्रिमता नहीं जान पड़ती । सब से बड़ी बात यह है कि वह जिस पात्र का अभिनय करता है, उसी में बिलकुल तल्लीन हो जाता है । वह तीस नाटकों में पार्ट लेता है । सभी में वह स्त्री का ही अभिनय करता है ! इन नाटकों में से उसे दो बहुत पसन्द हैं । एक का नाम है 'पुनर्मिलन', और दूसरे का '[illegible]' 'पुनर्मिलन' एक उपन्यास से लिया गया है । वह उपन्यास चौदह जिल्दों में समाप्त हुआ है, और उसमें १२० अध्याय हैं । उसकी रचना २०० वर्ष पहले किसी लेखक ने की थी । लेखक का नाम अज्ञात है । आज भी चीन [illegible] उसको मानता है । 'पुनर्मिलन' की कथा हृदयग्राही है । उसकी कविता का अंश कितना मधुर है—

"फूल मुरझाते और झड़ जाते हैं, और [illegible] का [illegible] कर देते हैं । [illegible] [illegible] हैं, [illegible] करता है ।"

[illegible] की कथा यह है कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

यह देखा गया है कि सभी देशों की प्रचलित प्राचीन गाथाओं में समता है। एक विद्वान ने अभिज्ञान-शाकुन्तल की कथा से बिलकुल मिलती-जुलती एक कथा ग्रीक-साहित्य से उद्धृत की थी। जापानी नाटकों में हम हेमलेट, मार्लन, एंड्रोमेडास, अथवा हारूँ-रशीद को जापानी वेश में देख सकते हैं। उनकी बातें भी वे ही हैं, और काम भी वैसे ही। जो भिन्नता है, वह देश और काल के कारण। बात यह है कि देश और काल के व्यवधान से विभक्त हो जाने पर भी मानव-जाति एक ही है, और उसकी मूल भावनाएँ सर्वत्र एक ही रूप में विद्यमान रहती हैं। अतएव जिन कथाओं में मनुष्यत्व का सच्चा स्वरूप प्रदर्शित किया जाता है, उनमें परस्पर भिन्नता कैसे हो सकती है? हेमलेट शेक्सपियर के द्वारा डेन्मार्क का राजकुमार बनाए जाने पर भी मनुष्यत्व के कुछ विशेष गुणों से युक्त एक व्यक्ति-मात्र है, जिसका अस्तित्व सभी देशों और सभी कालों में सम्भव है। एक विशेष स्थिति में रहने से कोई भी मनुष्य हेमलेट हो सकता है।

कादुकी-नाटकों की अपेक्षा नो-नाटक अधिक प्राचीन हैं। कोई नौ सौ साल पहले कादुकी-नाटकों की सृष्टि हुई है। आरम्भ में ही ये नाटक बड़े लोकप्रिय हुए, और अपनी लोकप्रियता के कारण ही विद्वानों की दृष्टि में हेय हो गए। विद्वानों ने नो-नाटकों को अपना लिया और कादुकी-नाटक अशिक्षित जनता के ही उपयुक्त समझे गए। कादुकी-नाटकों का प्रचार बढ़ता ही गया। इधर विद्वानों की घृणा भी उन पर बढ़ती गई। इन नाटकों के अभिनय में पहले स्त्रियाँ भी सम्मिलित होती थीं।

शाला अथवा नट का आदर नहीं किया गया। प्रिंस आफ वेल्स के आगमन पर जापान के सम्राट् और राजकुमार नाटक देखने गए थे। इससे आशा की जा सकती है कि अब वहाँ नाटकों का अधिक आदर होने लगेगा, और नाट्य-कला की उन्नति भी अच्छी होगी।

अङ्गरेजी नाटक—इँगलैंड में नाटकों का प्राचीनतम रूप हमें वहाँ के मिस्ट्री (Mystery) और मिराकिल (Miracle)-नाटकों में मिलता है। इन नाटकों का विषय धार्मिक है। बाइबिल अथवा किसी महात्मा की दन्त-कथाओं के आधार पर इनकी रचना होती थी। भारतवर्ष में इन्हीं के जोड़ के नाटक ताड़-पत्र पर लिखे हुए पाए गए हैं। इन नाटकों के रचयिता महाकवि अश्वघोष माने गए हैं। इनमें बुद्धि, धृति, कीर्ति आदि सद्गुणों का और बुद्ध मौद्गलायन कौण्डिन्य आदि महात्माओं को रंगभूमि में अवतीर्ण होना पड़ा है। इँगलैंड में ऐसे नाटकों में हास्य-रस का भी समावेश किया गया है। इन्हीं के आधार पर [illegible] की रचना हुई है, अथवा यह कहना चाहिए [illegible] आधुनिक नाटकों का विकास हुआ है। [illegible] 1[illegible] तक नाटकों का शैशव काल था। [illegible] नाटक [illegible] [illegible] 1[illegible] से नाटक नाट्यशाला में खेले जाने लगे। सन् 1[illegible] में [illegible] इँगलैंड के सभी नगरों में नाटक [illegible] का अधिकार मिल गया, और 1[illegible] में [illegible] (Blackfriars

बाद जितने नाटक-कार हुए, उनमें गोल्डस्मिथ और शेरीडन ने ख्याति प्राप्ति की। इनके बाद अँगरेज़ी के आधुनिक नाट्य-साहित्य का आरंभ होता है।

उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में नेपोलियन का पतन होने पर, इँगलैंड की प्रभुता अच्छी तरह स्थापित हो गई। इसके बाद उसने अपने व्यवसाय और वाणिज्य में बड़ी तरक्की की। व्यापार का केंद्रस्थल हैं नगर। इस लिये नगरों की जन-संख्या खूब बढ़ने लगी।

नगरों में जन संख्या की वृद्धि के साथ-ही-साथ नाट्यशालाओं की भी वृद्धि होने लगी। अभी तक नाटकघर सिर्फ मनोरंजन के स्थान थे। वहाँ प्रायः ऐसे ही धनिक जाया करते थे, जो निठल्ले बैठे समय बिताया करते थे परन्तु अब नगर में रहनेवाले साधारण स्थिति के लोग और मज़दूर भी नाटकघर जाने लगे। दिन-भर काम करने के बाद आधी घड़ी यदि मनुष्य अपना मन न बहलावे तो उसका शरीर कैसे टिक सकता है? मन बहलाने का सब से अच्छा स्थान नगरों में नाटकघर ही है। इसीलिये उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में, नाटक और नाट्य-कला की खूब उन्नति हुई।

आधुनिक नाट्य-साहित्य [illegible] नाटककार टी० डब्ल्यू० रावर्टसन। [illegible] नाटक प्रिंस आफ वेल्स-थिएटर में खेले जाते [illegible] नाटकों के दो भेद हैं कामेडी और ट्रेजिडी। रावर्टसन ने कामेडी-नाटकों के पुनरुत्थान की चेष्टा की। प्रिंस आफ वेल्स-थिएटर के अध्यक्ष थे बेनक्राफ्ट

बाद जितने नाटक-कार हुए, उनमें गोल्डस्मिथ और शेरीडन ने ख्याति प्राप्ति की। इनके बाद अँगरेज़ी के आधुनिक नाट्य-साहित्य का आरंभ होता है।

उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में नेपोलियन का पतन होने पर, इँगलैंड की प्रभुता अच्छी तरह स्थापित हो गई। इसके बाद उसने अपने व्यवसाय और वाणिज्य में बड़ी तरक्की की। व्यापार का केंद्रस्थल हैं नगर। इस लिये नगरों की जन-संख्या खूब बढ़ने लगी।

नगरों में जन-संख्या की वृद्धि के साथ-ही-साथ नाट्यशालाओं की भी वृद्धि होने लगी। अभी तक नाटकघर सिर्फ मनोरंजन के स्थान थे। वहाँ प्रायः ऐसे ही धनिक जाया करते थे, जो निठल्ले बैठे समय बिताया करते थे, परंतु अब नगर में रहनेवाले साधारण स्थिति के लोग और मज़दूर भी नाटकघर जाने लगे। दिन-भर काम करने के बाद आधी घड़ी यदि मनुष्य अपना मन न बहलावे, तो उसका शरीर कैसे टिक सकता है? मन बहलाने का सब से अच्छा स्थान नगरों में नाटक घर ही है। इसीलिये, उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में, नाटक और नाट्य-कला की खूब उन्नति हुई।

आधुनिक नाट्य-साहित्य के पहले मौलिक नाटककार टी० डब्ल्यू० रावर्टसन (१८२६-१८७१) थे। उनके नाटक प्रिंस आफ़ वेल्स-थिएटर में खेले जाते थे। अँगरेज़ी में नाटकों के दो भेद हैं, कामेडी और ट्रेजिडी। रावर्टसन ने कामेडी-नाटकों के पुनरुत्थान की चेष्टा की। प्रिंस आफ़ वेल्स-थिएटर के अध्यक्ष के [illegible]

साहब। उन्होंने नाट्यशाला में स्वाभाविकता लाने का प्रयत्न किया। बेनक्राफ्ट साहब का जन्म सन् १८४१ में हुआ था। सन् १८६५ में उन्होंने प्रिंस आफ वेल्स-थिएटर की स्थापना की। उसने नाट्य-कला में परिवर्तन कर दिया। १८९७ में उन्हें 'सर' की उपाधि मिली।

इसी समय लीसियम (Lyceum)-थिएटर में इँगलैंड का प्रसिद्ध नट हेनरी इरविंग रंगमंच पर आया। वह सन् १८७८ से १८९९ तक लीसियम का प्रबंध करता रहा। उसकी बड़ी कीर्ति हुई। सन १८७४ में हेमलेट का पार्ट उसने बड़ी खूबी से खेला। शेक्सपियर के प्रसिद्ध मर्चेंट आफ् वेनिस नाटक में वह शाइलाक का पार्ट लेता था। इसमें भी वह कमाल करता था। उसने नटों की अच्छी स्थिति कर दी। उसके पहले लोग नटों का सम्मान नहीं करते थे। उनका पेशा भी नीच समझा जाता था। पर इरविंग की सब लोगों ने इज्जत की। सन १८९५ में वह नाइट बनाया गया। नटों में उसको सबसे पहले यह उपाधि मिली।

इस समय इँगलैंड में अच्छे-अच्छे कवि हुए। उन्होंने नाटक भी लिखे। परन्तु उनके नाटकों को रंगभूमि पर अच्छी सफलता नहीं हुई। मैकरेडी ने प्रसिद्ध कवि ब्राउनिंग के स्टेफोर्ड-नामक नाटक के लिये बड़ी तैयारी की। पर वह पाँच रात से अधिक नहीं चला। टेनिसन के दो कप एंड बैकट-नामक नाटकों को इरविंग ने खेला। पर उसे भी कुछ सफलता नहीं हुई। इसीलिये फ्रेंच नाटकों के ही आधार पर अँगरेजी में नाटक खेले जाते थे। सन् १८८१ में ए० डब्ल्यू० फिनरो साहब का नाटक खेला गया। उसका कुछ

देती, आचरण को विशद करती, निराशा और उत्साह-हीनता को दूर करती और मनुष्यों को उन्नति का पथ बतलाती।" सन् १८७८ में उन्होंने नाटक लिखना आरम्भ किया। उसी साल उनका 'Plays pleasant and unpleasant' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। उससे लोगों में बड़ी उत्तेजना फैली। उनका एक नाटक 'Mrs. Warren's Profession' [illegible] को सभी दुर्गुणों से [illegible] समाज अपने दुर्गुण [illegible] परन्तु समाज [illegible]

जो रंगभूमि पर अच्छी तरह खेला जा सके। परन्तु अब आधुनिक साहित्य में नाटकों के दो भेद कर दिये गये हैं। कुछ नाटक तो खेले जाने ही के लिये लिखे जाते हैं, परन्तु कुछ ऐसे भी नाटक होते हैं, जो श्रव्य काव्य कहे जाते हैं। अँगरेजी में उन्हें काव्यमय नाटक (Poetic Drama) कहते हैं। परन्तु उनमें वह विशेषता नहीं रहती, जिससे नाटक रंगमञ्च पर सफलता-पूर्वक खेला जा सकता है। टेनिसन के नाटक इसी कोटि के हैं। भवभूति के नाटकों में भी कवित्व की [illegible] है। उन्हें पढ़ने से जो आनन्द आता है वह [illegible] [illegible] की दृष्टि से [illegible] कुछ विचार करना चाहते हैं।

[illegible]

[illegible]

सभी घटनाएँ अलौकिक हैं। शेक्सपियर के नाटकों में भी प्रेतात्मा का दर्शन कराया जाता है। हिन्दू-मात्र का यह विश्वास है कि मानव-जीवन में एक अदृष्ट शक्ति काम कर रही है। उसी शक्ति का महत्व बतलाने के लिये अलौकिक घटनाओं का समावेश किया जाता है। शेक्सपियर भी इस अदृष्ट शक्ति को मानता था। उसने भी कहा है—'There is a tide in the affairs of men' अर्थात् मनुष्यों के जीवन में कभी एक ऐसी लहर उठती है, जो उन्हें सफलता के सिरे पर पहुँचाती है, और फिर निष्फलता के गड्ढे में गिरा देती है। दूसरी बात यह है कि नाटकों में तत्कालीन समाज का चित्र अंकित रहता है। लोगों का जो प्रचलित विश्वास है, उसका समावेश नाटकों में करना अनुचित नहीं। शेक्सपियर के समय में लोग प्रेतों के अस्तित्व पर विश्वास करते थे। उसी प्रकार कालिदास के समय में मुनियों के शाप पर लोगों का विश्वास था। अतएव जो नाटकों में यथार्थ चित्रण के पक्षपाती हैं, उनकी दृष्टि में भी ऐसी घटनाओं का समावेश अस्वाभाविक नहीं हो सकता।

नाटक की एक विशेषता और है। उसमें घटनाओं का घात-प्रतिघात सदैव होता रहता है। नाटकीय मुख्य अंकित की गति सदैव बढ़ रहती है। जीवन-स्रोत एक ओर बहता है, धक्का खाते ही उसकी गति दूसरी ओर [illegible] है। फिर धक्का लगने पर वह तीसरी ओर बहने लगता है। नाटक में मानव-जीवन का एक रूप दिखलाया जाता है।

[illegible] के नाटकों में [illegible] दिखलाया जाता है। मनुष्यों

आलिंगन करते हैं, और असत्पथ पर विचरण करने वाले सुख से रहते हैं। ज्ञान यह है कि धर्म का पथ श्रेयस्कर होता है, सुखकर नहीं। जो पार्थिव सुख और समृद्धि के इच्छुक हैं, उनके लिये धर्म का पथ अनुसरण करने योग्य नहीं, क्योंकि यह पथ सुख की ओर नहीं, कल्याण की ओर जाता है। नाटकों में धर्म की पराजय दिखलाने से उसका हीनत्व नहीं सूचित हो सकता। धर्म धर्म ही रहता है। दुःख और दारिद्र्य की छाया में रहकर भी पुरुष गौर-व [illegible] होता है। [illegible] वह अजेय रहता है। [illegible] नाटकों [illegible]

ऐसा समावेश करते हैं कि उससे एक अपूर्व चित्र खिल उठता है। वह चित्र पाठकों की कल्पना पर प्रभाव डालता है। वे अपने अनुभव द्वारा कवि के आदर्श की उच्चता स्वीकार कर लेते हैं। ऐसे लेखक सत्य का बहिष्कार नहीं करते। वे संसार की दैनिक घटनाओं से ही अपनी कथा के लिये सामग्री का संग्रह करते हैं। परन्तु उनकी कृति में घटनाओं का ऐसा विन्यास किया जाता है कि पाठक उसे प्रत्यक्ष देखने की इच्छा करे। पाठकों के मन में यही बात उदित होती है कि हमने ऐसा देखा नहीं है, परन्तु देखना अवश्य चाहते हैं। विक्टर ह्यूगो इसी श्रेणी के लेखक हैं। रोमेंटिक साहित्य कल्पना की सृष्टि है। वह प्रकृति से अतीत है। बैलजक की रचना में कल्पना की ऐसी ही लीला दृष्टिगोचर होती है। आधुनिक नाट्य-साहित्य में समाज के यथार्थ चित्रण का खूब ख्याल रखा जाता है। ऐसे नाटकों का आरम्भ इब्सन ने किया है। उनमें सामाजिक जीवन का यथार्थ परिपाक हुआ है। तो भी उनमें समाज के भविष्य विधान का अभाव पाया जाता है। अतः जो लोग यह कहते हैं कि आधुनिक साहित्य में रियलिज्म की प्रधानता है उनकी बात स्वीकार नहीं की जा सकती। बात यह है कि जिस प्रकार वर्तमान युग में दृश्य जीवन भूत भविष्य और वर्तमान का एकत्र कर अग्रसर हो रहा है जिस प्रकार वह अतीत को वर्तमान में सजीव करके उसके भविष्य को खोज रहा है, उसी प्रकार साहित्य में भी भूत और भविष्य को एकत्र करने की चेष्टा की जा रही है। आधुनिक साहित्य का मुख्य उद्देश्य यही जान पड़ता है कि व्यक्ति-स्वातन्त्र्य को रक्षा करके समाज के साथ

उसके साथी ही। उपन्यास-भर में उनके चरित्र की इसी जटिलता का विश्लेषण किया गया है। रवीन्द्र बाबू के 'घरे-बाहिरे'-नामक उपन्यास में संदीप जैसा इन्द्रियपरायण है, वैसा ही स्वदेश-वत्सल और वीर भी। इब्सन, मेटरलिंक अथवा रवींद्रनाथ की कुछ प्रधान नायिकाओं के चरित्र ऐसे अंकित हुए हैं कि जब हम अपने संस्कारों के अनुसार उन पर दृष्टिपात करते हैं, तो उनके चरित्र में हीनता देखते हैं; परन्तु सत्य की ओर लक्ष्य रखने से यही कहना पड़ता है कि हम उन पर अपनी कोई सम्मति नहीं दे सकते।

वर्तमान युग को विद्वान लोग 'डिमाक्रेटिक' लोग-यन्त्र का युग कहते हैं। सर्वत्र सभी विषयों की नाना प्रकार से परीक्षा हो रही है। आजकल जैसे सामाजिक और राष्ट्रीय तत्व साहित्य में स्थान पा रहे हैं, वैसे ही वैज्ञानिक, दार्शनिक, और आध्यात्मिक तत्व भी साहित्य के अंगीभूत हो रहे हैं। अब रस और तत्व का सम्मिलन हो गया है। गेटी और शिलर ने अपने समय में तत्वों को कला के रस-रूप में परिणत किया था। अन्य युगों की अपेक्षा वर्तमान युग में साहित्य का अधिकार-क्षेत्र बढ़ गया है। आधुनिक साहित्य में आध्यात्मिक काव्य, नाटक और उपन्यासों की रचना से यही बात प्रकट होती है।

आजकल इंगलैंड के नाट्य-साहित्य की जैसी गति है, उसे भली भाँति समझने के लिये हमें महायुद्ध के कुछ समय के पहले के साहित्य पर ध्यान देना चाहिए। युद्ध आरम्भ होने के ठीक पहले, चार-पाँच वर्ष तक इंगलैंड का साहित्य और कला-कौशल

भारतीय नाटकों की कई विशेषताएँ हैं। यदि नाटककार और नट अपने अभिनय में भारतीयता का ख़याल रक्खें, तो इससे बड़ा लाभ हो। रवीन्द्रनाथ का एक नाटक 'डाकघर' कलकत्ते में खेला गया था। उसमें भारतीयता का ख़याल रक्खा गया था। इससे उसे सफलता भी अच्छी हुई।

हिन्दी के कुछ नाटककार संगीत के ऐसे प्रेमी हैं कि वे मौक़े-बे-मौक़े अपने पात्रों से गाना ही गवाया करते हैं। राजा की कौन कहे, राजमहिषी तक अपने पद का गौरव भूल कर नाचने-गाने लग जाती है। राजसभा तो बिलकुल संगीतालय ही हो जाती है। यह भी खेद की बात है।

से कवि तथा सामाजिक लोगों की रुचि उस काल की अपेक्षा अनेकांश में विलक्षण है, इससे संप्रति प्राचीन मत अवलंबन करके नाटक आदि दृश्य काव्य लिखना युक्तियुक्त नहीं बोध होगा।

जिस समय में जैसे मनुष्य जन्म ग्रहण करें और देशीय रीति-नीति का प्रचार जिस रूप से चलता हो, उस समय में उक्त मनुष्यगण के अन्तःकरण की वृत्ति और सामाजिक रीतिपद्धति इन दोनों विषयों की समीचीन समालोचना करके नाटकादि दृश्यकाव्य प्रणयन करना योग्य है।

नाटकादि दृश्यकाव्य प्रणयन करना हो तो प्राचीन समस्त रीति ही परित्याग करे यह आवश्यक नहीं है, क्योंकि जो प्राचीन रीति वा पद्धति आधुनिक सामाजिक लोगों की मतपोषिका होगी वह सब अवश्य ग्रहण होगी। नाटक-रचना-प्रणाली विषय में देश, काल और पात्रगण के प्रति विशेष रूप से ध्यान रखना उचित है। [illegible] अलंकार [illegible] की [illegible] करने की [illegible] नहीं होगी।

[illegible]

पटाक्षेप के साथ ही नेपथ्य में चर्चरिका आवश्यक है, क्योंकि बिना उसके अभिनय शुष्क हो जाता है। जहाँ बहुत स्वर मिलकर कोई बाजा बजे या गान हो उसको चर्चरिका कहते हैं। इसमें नाटक की कथा अनुरूप गीतों का वा रागों का बजना योग्य है। जैसे सत्य हरिश्चन्द्र में प्रथम अंक की समाप्ति में जो चर्चरिका बजै वह भैरवी आदि सवेरे के राग की और तीसरे अंक की समाप्ति पर जो बजै वह रात के राग की होनी चाहिए।

कैशिकी, सात्वती, आरभटी और भारती वृत्ति, कैशिकी वृत्ति—जो वृत्ति अति मनोहर, स्त्रीजनोचित भूषण से भूषित, और रमणी-बाहुल्य नृत्य गीतादि परिपूर्ण और भोगादि विविध विलास-युक्त होती है उसका नाम कैशिकी वृत्ति है। यह वृत्ति शृङ्गाररस प्रधान नाटकों की उपयोगिनी है।

सात्वती वृत्ति—जिस वृत्ति-द्वारा शौर्य, दान, दया और दाक्षिण्य प्रभृति से वीरोचिता, विविध गुणान्विता, आनन्द-विधोपोद्भाविनी, सामान्य विलास-युक्ता, विशोका और उत्साहवर्द्धिनी वाग्भंगी नायक-कर्तृक प्रयुक्त होती है, उसका नाम सात्वती वृत्ति है। वीररस-प्रधान नाटक में इसकी आवश्यकता होती है।

आरभटी वृत्ति—माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध, आघात, प्रतिघात और संघनादि विविध रौद्रोचितकार्यसंदर्भिता वृत्ति का नाम आरभटी है। रौद्ररस वर्णन के स्थल में इस वृत्ति पर दृष्टि रखनी

प्ररोचना—जिसके अनुष्ठान द्वारा अभिनयदर्शन में सामाजिक लोगों की प्रवृत्ति जन्मती है उसका नाम प्ररोचना है। यह सूत्रधार नट, पारिपार्श्वक या नटी के द्वारा विदित होती है।

नेपथ्य—रंगस्थल के पश्चात् भाग में जो एक गुप्त स्थान रहता है उसका नाम नेपथ्य है।

अलंकारयिता इसी स्थान में पात्रों को वेश-भूषणादि से साजते हैं। जब रंगभूमि में आकाशवाणी, दैवी वाणी अथवा और कोई मानुषी वाणी का प्रयोजन होता है तो वह नेपथ्य ही में से गाई या कही जाती है।

उद्देश्यबीज—गुम्फित आख्यायिका के समय मर्म का नाम उद्देश्यबीज है। कवि जो इसका साधन न कर सकेगा तो उसका ग्रंथ नाटक में परिगणित न होगा।

वस्तु—नाटकीय इतिहास अथवा कोई विवरण विशेष का नाम वस्तु है। वस्तु दो प्रकार की है यथा—आधिकारिक वस्तु और प्रासंगिक वस्तु।

जो समस्त इतिवृत्त का प्रधान नायक होता है उसको अधिकारी कहते हैं। अधिकारी का आश्रय करके जो वस्तु विरोचित होती है, उसका नाम आधिकारिक वस्तु है। जैसा उत्तरचरित्र

इस आधिकारिक इतिवृत्त का रस पुष्ट करने के लिए प्रसंगों में जो वृत्त लिखा होता है, उसका नाम प्रासंगिक वस्तु है। जैसा वालरामायण में सुग्रीव-विभीषणादि का चरित्र।

दिया जा सकता है और उन्हीं के प्रणीत ग्रन्थ नाटक में परिगणित होते हैं।

नाटक में अंतर का भाव कैसे चित्रित किया जाता है इसका एक अति आश्चर्य दृष्टांत अभिज्ञान शाकुन्तल से उद्धृत किया गया।

शकुंतला श्वशुरालय में गमन करेगी इस पर भगवान् कण्व जिस भाँति खेदप्रकाश करते हैं वह यह है।

कण्व—(मन में चिन्ता करके) आहा आज शकुंतला पतिगृह में जायगी यह सोचकर हमारा हृदय कैसा उत्कंठित होता है, अंतर में जो बाष्पभर का उच्छ्वास हुआ है उससे वाग्जड़ता हो गई है, और दृष्टिशक्ति चिन्ता से जड़ीभूत हो रही है। हाय! हम वनवासी तपस्वी हैं। सो जब हमारे हृदय में ऐसा वैक्लव्य होता है तो कन्या के वियोग के अभिनव दुःख से बेचारे गृहस्थों की क्या दशा होती होगी।

[illegible]

[illegible]

मानव प्रकृति की समालोचना करनी हो तो नाना देशों में भ्रमण करके नाना प्रकार के लोगों के साथ कुछ दिन वास करे, तथा नाना प्रकार के समाज में गमन करके विविध लोगों का आलाप सुने तथा नाना प्रकार के ग्रन्थ अध्ययन करे, वरंच समय में अश्वरक्षक, गोरक्षक, दास दासी, ग्रामीण, दस्यु प्रभृति नीच-प्रकृति और सामान्य लोगों के साथ कथोपकथन करे। यह न करने से मानवप्रकृति समालोचित नहीं होती। मनुष्यों की मानसिक [illegible]

हास्य का उद्दीपक हो। संयोग शृंगार वर्णन में इसकी स्थिति विशेष स्वाभाविकी होती है।

रस वर्णन—शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, अद्भुत, बीभत्स, शांत, भक्ति वा दास्य, प्रेम वा माधुर्य, सख्य, वात्सल्य, प्रमोद वा आनन्द।

शृंगार, संयोग और वियोग दो प्रकार का। यथा शकुन्तला के पहले और दूसरे अंक में संयोग, पाँचवें छठे अंक में वियोग।

हास्य, यथा भाण और प्रहसनों में।

करुण, यथा सत्यहरिश्चन्द्र में शैव्या के विलाप में।

रौद्र, यथा धनञ्जयविजय में युद्धभूमि-वर्णन।

वीर रस ४ प्रकार। यथा दानवीर, सत्यवीर, युद्धवीर और दयोगवीर। दानवीर, यथा सत्यहरिश्चन्द्र में 'जेहि पाली इक्ष्वाकु सों' इत्यादि। सत्यवीर, यथा सत्यहरिश्चन्द्र में 'बेचि देइ दारा सुअन' इत्यादि। युद्धवीर यथा नीलदेवी। दयोगवीर[क] मुद्राराक्षस। भयानक, अद्भुत और बीभत्स, यथा सत्यहरिश्चन्द्र में श्मशानवर्णन।

शांत यथा प्रबोध-चन्द्रोदय में, भक्ति यथा संस्कृत चैतन्य-चन्द्रोदय में, प्रेम यथा चन्द्रावली में। वात्सल्य और प्रमोद के उदाहरण नहीं हैं।

[क] मुद्राराक्षस में मुख्य अंगीभाव से कोई रस न पाकर मुझको दयोगवीर की कल्पना करनी पड़ी।

योग्य है। यदि इनके विरुद्ध नायिका-नायक के चरित्र हों तो उनका परिणाम पूरा दिखलाना चाहिए। यथा नहुष नाटक में इंद्राणी पर आसक्त होने से नहुष का नाश दिखलाया गया है, अर्थात् चाहे उत्तम नायिका-नायक के चरित्र की समाप्ति सुखमय दिखलाई जाय किंवा दुश्चरित्र पात्रों के चरित्र की समाप्ति कंटकमय दिखलाई जाय। नाटक के परिणाम से दर्शक और पाठक कोई उत्तम शिक्षा अवश्य पावें।

नाटक की कथा—नाटक की कथा की रचना ऐसी विचित्र और पूर्वापर- बद्ध होनी चाहिए कि जब तक अंतिम अंक न पढ़े किंवा न देखे, यह न प्रगट हो कि खेल कैसे समाप्त होगा। यह नहीं कि 'सीधा एक को देता हुआ, उसने यह किया वह किया' प्रारंभ ही में कहानी का मध्य होए हो।

पात्रों के स्वर—शोक, हर्ष, हास, क्रोधादि के समय में पात्रों को स्वर भी घटाना-बढ़ाना उचित है। जैसे स्वाभाविक स्वर बदलते हैं, वैसे ही दृष्टि भी बदले। 'आप ही आप' ऐसे स्वर में कहना चाहिए कि श्रोता हो कि धीरे-धीरे कहता है, किंतु स्वर भी इतना उच्च हो कि श्रोतागण निष्कंटक सुन लें।

पात्रों की दृष्टि—यद्यपि परस्पर बातें करने में पात्रों की दृष्टि परस्पर रहेगी, किंतु कहीं २ विज्ञ पात्रों को दर्शकों की ओर देखकर कहने पड़ते। इस अवसर पर अभिनय-चातुर्य यह है कि यद्यपि पात्र दर्शकों की ओर देखें किंतु यह न होए हो कि पात्र वे दर्शकों से कहते हैं।

पूरा अध्ययन किया था। उसकी लेखनी ने बँगला साहित्य में एक नये युग का आविर्भाव किया। जिस समय रामनारायण तर्करत्न का लिखा हुआ रत्नावली नाटक खेला गया तो मधुसूदनदत्त के हृदय में विद्युत गति से यह शुभ भाव जागृत हुआ कि सच्ची प्रतिभा विदेशी भाषा में अपने महत्व को प्राप्त नहीं कर सकती। जिस मधुसूदन ने आज तक बँगला में एक अक्षर भी नहीं लिखा था वह थोड़े ही समय में अपनी भाषा का सर्वश्रेष्ठ कवि प्रसिद्ध हुआ। इस समय से पूर्व हिन्दू कालिज के पढ़े हुये बङ्गाली नवयुवक अपनी भाषा और साहित्य को घृणा की दृष्टि से देखते थे और अँगरेज़ी भाषा में लिखने में ही अपनी शान समझते थे। परन्तु इस घटना के बाद बंगाल के लेखकों ने अपनी मातृभाषा में ख्याति प्राप्त करना ही अपना आदर्श रखा है।

मधुसूदनदत्त का पहला नाटक "शर्म्मिष्टा" बंगाली नाटकों में बहुत प्रसिद्ध है। यह अँगरेज़ी नाटकों की शैली पर लिखा गया था। इसकी भाषा सरल थी। वह बोलचाल की भाषा थी। उसमें रामनारायण तर्करत्न की भाषा का पाण्डित्य न था। इसके बाद 'पद्मावती" और "कृष्णकुमारी" लिखे गये। कृष्णकुमारी भारतीय नाटकों में पहला दुःखान्त नाटक (Tragedy) है जिसमें उदयपुर की एक राजकुमारी की विषादमय कथा का वर्णन है। इसमें सन्देह नहीं कि मधुसूदन ही आधुनिक बँगला नाटक का प्रवर्तक कहा जा सकता है।

[illegible]

प्राचीन हिन्दी नाटक

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

हिन्दी भाषा में वास्तविक नाटक के आकार में ग्रन्थ की सृष्टि हुए पचीस वर्ष से विशेष नहीं हुए। यद्यपि नेवाज कवि का शकुन्तला नाटक, वेदांत-विषयक भाषा-ग्रन्थ समय-सार नाटक, ब्रजवासीदास के प्रबोधचन्द्रोदय प्रभृति नाटक के भाषा-अनुवाद नाटक नाम से अभिहित हैं, किंतु इन सबों की रचना काव्य की भाँति है, अर्थात् नाटक-रीत्यानुसार पात्रप्रवेश इत्यादि कुछ नहीं है। भाषाकविकुलमुकुटमणिरूप देव कवि का देवमायाप्रपंच नाटक और श्रीमहाराज काशिराज की आज्ञा से बना हुआ प्रभावती नाटक तथा श्रीमहाराज विश्वनाथसिंह रीवाँ का आनन्दरघुनंदन नाटक यद्यपि नाटक-रीति से बने हैं, किंतु नाटक यावत् नियमों का प्रतिपालन इनमें नहीं है और ये छन्दप्रधान ग्रन्थ हैं। किंतु नाटक-रीति से पात्रप्रवेशादि नियम-रक्षण द्वारा भाषा का प्रथम नाटक मेरे पिता पूज्य-चरण श्री कविवर गिरधरदास (वास्तविक नाम बाबू गोपालचन्द्र जी) का है। इसमें इन्द्र को ब्रह्महत्या

यहाँ पर यह बात प्रकाश करने में भी हमको अतीव आनन्द होता है कि लण्डननगरस्थ श्रीयुत फ्रेडेरिक पिनकाट साहब ने भी शकुन्तला का हिन्दी भाषा में अनुवाद* किया है। वह अपने २० मार्च के पत्र में हिन्दी ही में मुझको लिखते हैं 'उस पर भी मैंने हिन्दी भाषा के सिखलाने के लिये कई एक पोथियाँ बनाई हैं। उनमें से हिन्दी भाषा में शकुन्तला नाटक एक है।'

हिन्दी भाषा में जो सबसे पहला नाटक खेला गया वह जानकीमंगल था। स्वर्गवासी मित्रवर बाबू ऐश्वर्यनारायणसिंह के प्रयत्न से चैत्र शुक्ल ११ सम्वत् १९२५ में बनारस थियेटर में बड़ी धूमधाम से यह खेला गया था। रामायण से कथा निकाल कर यह नाटक पण्डित शीतलाप्रसाद त्रिपाठी ने बनाया था। इसके पीछे प्रयाग और कानपुर के लोगों ने भी रणधीर-प्रेममोहिनी और सत्यहरिश्चन्द्र खेला था। पश्चिमोत्तर देश में ठीक नियम पर चलने वाला कोई आर्य शिष्ट जन का नाटकसमाज नहीं है।

अर्ध-हिन्दी-नाटक-तालिका

[illegible] नाटक	(श्रीगिरधरदास)
शकुन्तला	(राजा लक्ष्मणसिंह
मुद्राराक्षस	हरिश्चन्द्र)
सत्यहरिश्चन्द्र	—

* यह अनुवाद नहीं है। [illegible] के अनुवाद का [illegible] है।

सज्जाद-सुम्बुल	(बाबू केशोराम भट्ट विहारबंधु-सम्पादक)
शमशाद-सौसन	,,
जय नारसिंह की	(पं० देवकीनन्दन तिवारी, प्रयाग समाचारपत्र-सम्पादक)
होली खगेश	,,
चक्षुदान	,,
पद्मावती शर्मिष्ठा चन्द्र सेन	(पं० बालकृष्ण भट्ट हिन्दी-प्रदीप-सम्पादक)
सरोजिनी	(पं० गणेशदत्त)
,,	(राधाचरण गोस्वामी भारतेन्दु-सम्पादक)
मृच्छकटिक	(पं० गदाधर भट्ट मालवीय)
,,	(पं० दामोदर शास्त्री)
,,	(बाबू ठाकुरदयालसिंह)
वारांगनारहस्य	(पं० बदरीनारायण चौधरी, आनन्द-कादम्बिनी के सम्पादक)
विज्ञानविभाकर	(पं० ज्ञानी विहारीलाल)
ललिता नाटिका	(पं० अम्बिकादत्त व्यास साहित्याचार्य वैष्णव पत्रिका और पीयूषप्रवाह के सम्पादक)
देव-पुरुष-दृश्य	,,
वेणीसंहार नाटक	,,
गोसंकट	,,
जानकीमङ्गल	(पं० शीतलाप्रसाद त्रिपाठी)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटक

(मिश्रबन्धु)

भारतेन्दु के नाटकों का संक्षिप्त विवरण

(१) "नाटक" नामक ४६ पृष्ठों के लेख में इन्होंने नाटक के लक्षण, नाटक बनाने की रीति तथा नाटक का इतिहास लिखा है। इनके अतिरिक्त और बहुत सी जानने योग्य बातें नाटक के विषय में वर्णित हैं, जो पढ़ने योग्य हैं। इसकी रचना संवत् १९४० में हुई।

(२) "सत्यहरिश्चन्द्र" नाटक संवत् १९३२ में बना। यह आर्य-क्षेमेश्वर-कृत "चण्डकौशिक" के आशय पर बनाया गया है, परन्तु उसका अनुवाद नहीं है। यह एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है, और भारतेन्दु की उत्कृष्ट रचनाओं में इसकी गणना है। इसमें महाराज हरिश्चन्द्र की सत्य-परीक्षा का वर्णन है। राजा के यहाँ पूर्व काल में जिस प्रकार ऋषियों का आदर होता था, वह इसमें पूर्ण रूप से दिखलाया गया है। महारानी शैव्या के स्थान में आने वाली विपत्ति का दिग्दर्शन करा दिया गया है। राजा हरिश्चन्द्र की सत्यप्रियता इतनी बढ़ी हुई थी कि स्वप्न में भी

हिन्दी और अनुवाद नाटक

लेखक—डा० लक्ष्मण स्वरूप एम० ए० पी० एच० डी०

बीसवीं शताब्दी के भारतीय साहित्य में एक नए युग का सूत्रपात हुआ है। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की ओजस्विनी लेखनी का प्रभाव केवल बंगाल पर ही नहीं है किन्तु सारे भारतवर्ष पर है। उर्दू कविता भी अपनी मर्यादा का उल्लङ्घन कर रही है। फारसी आदर्शों का अनुकरण अब छूटता जाता है। सर मुहम्मद इक़बाल की कविता ने इसकी पुरानी हड्डियों में नए जीवन का संचार कर दिया है। हिन्दी में भी खड़ी बोली का सम्प्रदाय खड़ा हो गया है इस मत के अनुयायियों की दिन प्रतिदिन वृद्धि हो रही है। महाकवि मैथिलीशरण गुप्त के काव्य इस मत को प्रतिष्ठित हैं। महाकवि प्रेमचन्द की कहानियों में यथार्थता का आभास दृष्टिगोचर होता है। नए युगका अभी प्रादुर्भाव नहीं हुआ परन्तु निश्चय रूप से कहा जा सकता है कि सूत्रपात हो चुका है इस सूत्रपात के असन्दिग्ध चिह्न स्थान-स्थान पर दिखाई देते हैं एक लेख ने—जो माडर्न रिव्यु, मार्च सन् १९२३ में प्रकाशित हुआ था—मैंने बतलाया था कि उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में [illegible]

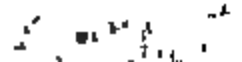

रणछोड़दास उदयराम—आधुनिक गुजराती नाटक का प्रवर्तक रणछोड़ भाई उदयराम है। उसने संस्कृत के कई नाटकों का गुजराती में अनुवाद किया। उसका हरिश्चन्द्र नाटक बहुत लोकप्रिय हुआ, और उसका 'ललिता दुःख दर्शक' गुजराती का पहला सामाजिक दुःखान्त नाटक है। इसके बाद गुजराती में कई अच्छी नाटक मण्डलियों का उदय हुआ। दुःख का विषय है कि इन से गुजराती नाटक जो सफलता से खेले जाते हैं, प्रकाशित ही होते।

लहर पहुँचती रहती है, परन्तु उसमें झङ्कार मात्र होता है, वर्ण-विन्यास नहीं होता। अतएव ऐसे शब्द को 'ध्वन्यात्मक' कहते हैं, क्योंकि वह ध्वनि पर ही अवलम्बित होता है। दूसरा वर्णात्मक शब्द वर्ण-विन्यास-युक्त होता है।

ध्वन्यात्मक शब्दों में कितना आकर्षण है, यह अविदित नहीं। वाद्यों का मधुरवादन, पक्षियों का कलकूजन, रमणीय कण्ठों का स्वर, कितना हृदय-विमोहक है, यह सब जानते हैं। शेख सादी कहते हैं—

'सुन्दर मुख से मधुर ध्वनि कहीं उत्तम है। वह आनन्दित करती है, और इससे प्राणों की पुष्टि होती है। बालकों के कण्ठ की कूक क्या स्वर्गीय सुधा नहीं बरसाती? मुरलीमनोहर की मुरली क्या पादप एवं लता-बेलियों तक को स्तम्भित नहीं करती थी? कविवर सूरदास जी की 'सुनहु हरि मुरली मधुर बजाई' कितना मनोहर है।

क्या नट को तुम्बड़ी का नाद सुनकर सर्प विलुब्ध नहीं हो जाता? क्या वधिक की वीणा पर हरिण अपना प्राण उत्सर्ग नहीं कर देता? ध्वनि अपार शक्तिमयी है, अतएव ध्वन्यात्मक शब्द भी प्रभावशालिता में कम नहीं। परन्तु वर्णात्मक शब्द उससे भी लोकोत्तर है। संसार का साहित्य, जो समस्त सभ्यताओं का जनक है, वर्णात्मक शब्दों का ही विभूति है। इसीलिये ध्वन्यात्मक से वर्णात्मक शब्दों का महत्व अधिक है।

व्यवहार में देखा जाता है कि जिसकी वाचाशक्ति जितनी बड़ी और सुसंगठित होती है, संसार में उसको उतनी ही सफलता मिलती है। 'बात की करामात' प्रसिद्ध है। वचन-रचना

अपूर्व आनन्द का समुद्र उमड़ रहा है, और उसमें लोग मग्न हो रहे हैं, हाथ-पाँव मार रहे हैं, उछल रहे हैं और जितना ही रस का पान कर रहे हैं, उत्तरोत्तर उनकी तृषा उतनी ही बढ़ती जा रही है।

कण्ठस्वर, मधुरध्वनि, और वचन-रचना के अतिरिक्त वेश-विन्यास, भावभंगी, कथन-शैली इत्यादि का प्रभाव भी हृदय पर पड़ता है। इनकी सहकारिता से वचन-रचना अपने भावों को अधिकाधिक पुष्ट कर सकती है। कर-संचालन, अंग-संचालन, अथच अंगुलि-निर्देश से अनेक अस्पष्ट भाव हो जाते हैं और कितनी ही अव्यक्त बातें व्यक्त बनती हैं। नृत्त अथवा नृत्य एवं अभिनय के ढंग की अनेक कलाएँ भी यथावसर भावपुष्टि का साधन बनती रहती हैं। अतएव इनकी उपयोगिता भी अल्प नहीं। अब ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक शब्द अंग संचालनादि अन्य साधनों और कलाओं के आधार से किसी भाव को पुष्ट करते हैं, उसको वास्तविक पुष्टि उसी समय होती है और साहित्य के उस रस की यथार्थ उत्पत्ति भी प्रायः तभी होती है, जो सहृदय-हृदय-संवेद्य माना जाता, और जिसका सुख ब्रह्मानन्द समान कहा जाता है। इसीलिये प्रायः दृश्य काव्यों द्वारा ही साहित्यिक रस की मीमांसा की गई है, क्योंकि उसमें प्रायः सभी साधनों का समीकरण होता है।

रस की उत्पत्ति

यह स्वाभाविकता है कि मनुष्य मनुष्य के सुख से सुखी और उसके दुःख से दुखी होता है। संबंध-विशेष होने पर इसकी मात्रा

रति आदिक स्थायी भावों के आधार नायक-नायिका, 'आलम्बन' और उनके उद्दीप्त करने वाले, चंद, चाँदनी, मलय-पवन आदि 'उद्दीपन' कहलाते हैं।

'रति आदिक स्थायी भावों का जो अनुभव कराते हैं, उन्हें अनुभाव कहते हैं।'

'रति आदिक स्थायी भाव में आविर्भूत और तिरोभूत होकर जो निर्वेद आदि भाव अनुकूलता से व्याप्त रहते हैं, उन्हें विशेष रीति से संचरण करते देखकर संचारी कहा जाता है।'

मानव के हृदय में वासना अथवा संस्कार-रूप से अनेक भाव सदा उपस्थित रहते हैं, वे किसी कारण-विशेष द्वारा जिस समय व्यक्त होते हैं, उसी समय उनकी उपस्थिति का पता चलता है। इन भावों में जिन में अधिक स्थिरता और स्थायिता होती है, जो किसी भी काव्य नाटिकादि में आद्योपान्त उपस्थित रहते हैं, प्रधानता और प्रभावशालिता में औरों से उत्कर्ष रखते हैं, साथ ही जिनमें रस-रूप में परिणित होने की शक्ति रहती है, उनको स्थायी भाव कहा जाता है।

"जैसे मनुष्यों में राजा, शिष्यों में गुरु, वैसे ही नव भावों में स्थायी भाव श्रेष्ठ होता है।" - भरत मुनि

शृंगार, हास्य, करुण आदि नव रसों के क्रमशः रति, हास, शोक आदि नव स्थायी भाव हैं। इन स्थायी भावों में से कोई एक जब विभाव, अनुभाव और संचारी भाव की सहायता से लोकोत्तर आनन्द रूप में परिणत होकर व्यक्त होता है, तब उसको 'रस' संज्ञा होती है।

स्थायी भाव के कारण को विभाव, कार्य को अनुभाव और सहकारी को संचारी भाव कहते हैं।

रसास्वादन प्रकार

आप लोगों को इसका अनुभव होगा कि रामलीला के दृश्यों का सबके हृदय पर समान प्रभाव नहीं पड़ता। कोई उनको देखकर अत्यंत विमुग्ध होता है, कोई अल्प और कोई नाम-मात्र को। रस का अधिकारी सबका हृदय नहीं होता। जिसमें भावुकता नहीं, जिसकी वासना रस-ग्रहणाधिकारिणी नहीं—और जिसकी संस्कृति में रसनानुकूल साधनाएँ नहीं; उनके हृदय में रस की उत्पत्ति नहीं होती।

समस्त साधनों के उपस्थित होते भी जिसके हृदय का स्थायी-भाव यथातथ्य व्यक्त नहीं होता, उसके हृदय में रस की उत्पत्ति होती ही नहीं। रस की उत्पत्ति होगी जब स्थायी भाव व्यक्त होकर विभाव, अनुभाव और संचारीभाव के साथ सर्वथा तल्लीन हो जायगा।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि स्थायी भाव के व्यक्त होने का क्या अर्थ? दूसरी बात यह कि सब दर्शकों के रतिभाव को रसता क्यों नहीं प्राप्त होती?

जितने स्थायी अथवा संचारी भाव हैं, वे वासना-रूप से सदैव मानवमात्र के हृदय में वैसे ही विद्यमान रहते हैं, जैसे पृथ्वी में गंध। कहा गया है कि 'गंधवती पृथ्वी', किन्तु पृथ्वी की गंध कुट्टन होने पर ही विदित होती है। इसी प्रकार भावोदय भी विशेष कारणों

लगा, त्यों-त्यों नई-नई धारणाएँ हुई और एक के बाद दूसरे मत प्रकट होने लगे। किसी ने कहा—"विभाव अनुभाव और संचारी भाव तीनों मिलकर इसकी सृष्टि करते हैं, क्योंकि वे परस्पर अन्योन्याश्रित हैं।" किसी ने कहा—"तीनों में जो चमत्कारी होगा, उसी की रस-संज्ञा होगी, अन्यथा किसी की नहीं।" जिस समय यह विवाद चल रहा था, उसी समय महामुनि भरत ने यह व्यवस्था दी कि विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। किन्तु यह उन्होंने नहीं बतलाया कि इन तीनों का संयोग किसके साथ होने से, परस्पर होने से अथवा किसी अन्य के साथ होने से उन्होंने लिखा है—

"जिस प्रकार गुड़ादिक द्रव्य व्यंजनों और ओषधियों से विविध प्रकार के पानक रस बनते हैं, वैसे ही अनेक भावों से युक्त होकर स्थायी भाव भी रसत्व को प्राप्त होते हैं।"

विभाव, अनुभाव और संचारी-भावों का उन स्थायी-भावों से संयोग होगा, उसी रस की उत्पत्ति होगी। रस किस में और कैसे उत्पन्न होता है, इस बात का निर्णय महामुनि भरत ने अपने उद्धिखित सूत्र में स्पष्टता कर दिया है। किन्तु इसके अर्थ में ही मतभिन्नता हो गई, इसीलिये विवाद कुछ दिन और चला। भट्टलोल्लट, शंकुक, भट्टनायक भट्टमट, अभिनवगुप्त, धनञ्जय आदि अनेक विद्वानों ने इस विषय पर अपने विचार दिये हैं।

रस का विषय बड़ा कठिन है, कुछ मनीषि विद्वानों की धारणा है कि अब तक रस की उचित मीमांसा नहीं हुई। जो हो, कि

जब वह उन्हें वन जाने के लिए प्रस्तुत देखती है और उनके मुख की ओर ताकती है, आठ आठ आँसू रोने लगती है। फिर जब भगवान् रामचन्द्र भगवती जानकी को वन की भयंकरता बतलाने लगते हैं, उस समय न जाने कहाँ का भय आकर उसके जी में समा जाता है। उस समय तो वह और भीत होती है जब जनक-नन्दिनी के कुसुमादपि कोमल कलेवर पर दृष्टिपात करती है। किन्तु जनता को ये समस्त दशायें क्या उसे दुःखभागिनी बनाती हैं, नहीं, कदापि नहीं। वरन् प्रत्येक दशाओं में वह विचित्र सुख और आनन्द का अनुभव करती है। क्यों? इसलिये कि जिस संस्कृत से उसका हृदय संस्कृत है, उसके चरितार्थ करने की उसमें बड़ी ही मुग्धकारी सामग्री उसको मिलती है। दूसरी बात यह कि मानसिक भावों को जिस समय जिस रूप में परिणत होना चाहिये, उस समय उसके उस रूप में परिणत होने से ही आनन्द और सुख की प्राप्ति होती है, अन्यथा चित्त बहुत तंग करता है और यह ज्ञात होने लगता है कि हृदय न जाने किस बोझ से दबा जा रहा है! तीसरी बात यह कि अभिनय करने के समय अभि-नेता अपने पार्ट को जब इस मार्मिकता से करता है कि असली और नकली का भेद प्रायः जाता रहता है, तो उस समय दर्शकों को जो आनन्द होता है, वह भी अपूर्व ही होता है। चाहे यह अभिनय करुण रस का हो, चाहे वीभत्स या भयानक रस का। कारण इसका यह है कि उस समय की अभिनेता की स्वकर्मदक्षता और अदभुत अनुकरणशीलता चुपचाप उनपर विचित्र प्रभाव डाले बिना नहीं रहती।

का अर्थ लोक से सम्बन्ध न रखनेवाला है, अपूर्व अथवा परम विलक्षण नहीं। नाटकों और काव्यों में करुण, वीभत्स और भयानक रसों में भी आनन्द की ही प्राप्ति होती है, दुःखों की नहीं।

रस और ब्रह्मास्वाद

रस का आस्वाद ब्रह्मानन्द के समान होता है, समस्त साहित्य-मर्मज्ञों का यही सिद्धान्त है।

ब्रह्मास्वाद अर्थात् मुक्ति-दशा में ब्रह्ममात्र ही प्रकाशित रहता है और भावों का तिरोभाव हो जाता है। विभावादि जब स्थायी भावों के साथ मिलकर रस-रूप में परिणत होते हैं, उस समय भी केवल रस विकसित रहता है, और सब उसी में लीन हो जाते हैं, इसलिये यह ब्रह्मास्वाद सहोदर है, अथवा ब्रह्मास्वाद से उसकी समानता है।

३—नाटकों में देखा जाता है कि रस का उद्रेक होने पर एक काल में सहस्रों मनुष्य मन्त्रमुग्धवत् बन जाते हैं, एक साथ हँसते-रोते और तालियाँ बजाते हैं, आनन्द-ध्वनि करते हैं, शर्म-धर्म या थू-थू करने लगते हैं और कभी-कभी अपने से बाहर हो जाते हैं। यह रस की अलौकिकता है क्योंकि साधारणतया लोक में दो एक प्राणिविशेष में ही उसकी उपस्थिति देखी जाती है। दूसरी बात यह कि यह अपरिमित है, इसलिये कि अनेक श्रोताओं और दर्शकों के हृदय में यह एक ही समय में उदित और विकसित होता है।

क्या [illegible] में समस्त नाटक देखने और काव्य [illegible] [illegible] को ब्रह्मास्वाद की प्राप्ति होती है? [illegible]

भी निस्सन्देह बिगड़ा होगा, इसलिये अनुभाव भी उसमें मिले और तीनों के आधार से ही रस की सिद्धि हुई।

केवल अनुभाव द्वारा रस विकास—

टपटप टपकत सेदकन अंग अंग थहरात।
नीरजनयनी नयन में काहें नीर लखात ॥२॥

स्वेद बिन्दु का टपकना, अंगों का कम्पित होना, आँखों में जल आना अनुभाव है, और इन्हीं का वर्णन दोहे में है। किंतु कारण अप्रकट है, किसी विभाव के कारण ही ऐसा हो रहा है, चाहे वह आलम्बन हो अथवा उद्दीपन, अतएव अनुभावों द्वारा ही विभाव की सूचना मिल रही है। किसी श्रम, आवेग, चिंता और शंका के द्वारा ही ऐसी दशा होने की सम्भावना है, अतएव संचारी का उद्बोधन भी उसी से हो रहा है।

केवल संचारी द्वारा रस का आविर्भाव—

करति सुधारस पानसी रस बस ह्वै सरसाति।
फल गयंदगतिगामिनी उमगति आवति जाति ॥३॥

इस दोहे में हर्ष और औत्सुक्य पूर्ण मात्रा में मौजूद हैं, जो कि संचारी हैं। ये ही उस विभाव की ओर भी संकेत कर रहे हैं जो उनके आधार हैं। उमग-उमग कर आना-जाना अनुभाव के अप्रदूत हैं।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि विभाव, अनुभाव और संचारी भाव तीनों के द्वारा ही रस की उत्पत्ति होती है, किसी एक के द्वारा नहीं। जहाँ इनमें से कोई एक या दो होता है, वहाँ आक्षेप द्वारा शेष दो या एक का भी ग्रहण हो जाता है।

रसाभास

रस जब अनौचित्य से प्रवृत्त होता है, तो उसे रसाभास कहते हैं। रसभंग होने पर ही रसाभास होता है और अनौचित्य ही रसभंग का कारण है। देश, काल पात्र एवं सामाजिक आचार विचार और व्यवहार के अनुसार अनौचित्य अनेक रूपवाला है, फिर भी लक्ष्य की ओर दृष्टि आकर्षण के लिये, इसके कतिपय रूपों का वर्णन मिलता है।

रसाभास के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं

[illegible]

योग्य हैं कि उनकी जितनी प्रशंसा की जाय वह थोड़ी है। ये समस्त विश्व-विभूतियाँ पवित्र इसलिये हैं कि उनका दर्शन निर्दोष है और वे लोकोत्तर आनंदसदन हैं। यह शृंगार का महात्म्य है।

जब इस शृंगार को रसत्व प्राप्त हो जाता है, तो सोना और सुगंध की कहावत चरितार्थ होती है, उस समय वास्तव में मणि-काञ्चन योग उपस्थित होता है, निर्जीवप्राय जीवन बन जाता है और स्वर्ण कलश रवि-किरण-क्रान्त !!

क्या इन बातों पर गंभीरता पूर्वक विचार करने पर यह नहीं स्वीकार करना पड़ता कि शृंगार रस की पवित्रता और महत्ताओं के विषय में जो कथन किया गया, वह सत्य और युक्तिसंगत है।

शृङ्गार रस की व्यापकता

संसार में जो पवित्र, उत्तम, उज्ज्वल और दर्शनीय है, उसमें शृंगार रस का विकास है, इस कथन से ही शृंगार रस कितना व्यापक है, स्पष्ट हो जाता है।

प्राणियों में मनुष्य सर्वप्रधान है। जब उसकी ओर दृष्टि जाती है तब शृंगार रस की व्यापकता अन्य प्राणियों की अपेक्षा [illegible] अधिक पाई जाती है। किसी किसी प्राणी में शृंगार रस का कोई-कोई अंश [illegible] देखा जाता है, परन्तु [illegible] अधिकांश [illegible] मानव जाति में मिलता है अन्यों में नहीं। [illegible] सौन्दर्य में मिलती है अन्य गुणों में नहीं। [illegible] है, [illegible] है दूसरा नहीं।

[illegible]